Research Paper | Education | E-ISSN No : 2454-9916 | Volume : 9 | Issue : 5 | May 2023

''अद्वैत वेदांत के ब्रह्म और माया का कश्मीर शिवाद्वय के शिव और शक्ति से तुलनात्मक विवेचन''

मंजू मीना

शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ABSTRACT

भारतीय दर्शन परिवेश का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि अनेक विचारधारायें अद्वैतवाद का प्रतिपादन करती है। अद्वैतवाद का प्रतिपादन आस्तिक और नास्तिक दोनों विचारधाराओं में किया गया है। लेकिन यहां चर्चा का विषय शंकराचार्य का अद्वैत वेदांत और अभिनव गुप्त का कश्मीर शिवाद्वयवाद है। दोनों ही अद्वैतवाद मूलक विचारधारायें है। पहली विचारधारा परमसत्ता को ब्रह्म मूलक मानती है, जबकि दूसरी विचारधारा सम्पूर्ण विश्व को शिवमय मानती है। दोनों ही विचारधारायें ब्रह्म, शिव, माया, शक्ति जीव और जगत संबंधी अपने अपने मतो के द्वारा अद्वैतवाद की स्थापना करती है। इस शोध पत्र में ब्रह्म का स्वरूप, माया का स्वरूप तथा शिव–शक्ति के स्वरूप संबंधी मतों का उल्लेख कर तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा। इस शोध पत्र का उद्देश्य दोनों विचारधाराओं के भिन्न तथा अभिन्न मतो को प्रस्तुत कर इन दोनों दर्शनों की महत्ता को प्रकाशित करना है।

संकेताक्षरः– अद्वैत वेदांत, ब्रह्म, माया, कश्मीर शिवाद्वयवाद, शिव, शक्ति।

परिचय – आत्मा और ब्रह्म के बीच मे तादात्म्य संबंध को स्थापित करने का श्रेय उपनिषद के ऋषियों, मुनियों को जाता है। शंकर के अनुसार परमसत्ता ब्रह्म की ही सत्ता विद्यमान है। केवल यही सत्य है इसके अतिरिक्त सभी अवास्तविक बताये गये है। ब्रह्म के दो लक्षण स्वीकार किये गये है – स्थायी लक्षण और स्वरूप लक्षण। इस असत् जगत के रचयिता एवं संहारकर्ता के रूप मे ब्रह्म को तटस्थ या स्थायी लक्षण स्वरूप स्वीकार किया गया है। अपने स्वरूप लक्षण में ब्रह्म अत्यन्त ज्ञानी रूप में स्वीकार किया गया है।

उदाहरण के रूप में समझा जा सकता है जैसे यदि कोई किसान रंगमंच पर राजा का अभिनय कर रहा है तो यहां उसका स्वरूप लक्षण किसान कहलाएगा और ''राजा'' उसका तटस्थलक्षण माना जायगा।

उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप बृहत्वम् बृहत्वात् ब्रह्म। उपनिषदों में ब्रह्म को निर्गुण निराकार, निर्विशेष कहा गया है। यद्यपि ब्रह्म को अद्वितीय माना जाता है। किन्तु उपनिषद में बह्म के दो स्वरूप माने गये हैं निर्विशेष और सविशेष। निर्विशेष ब्रह्म को निर्गुण निराकार रूप की संज्ञा से अभिहित किया गया है। जबकि सविशेष गुण में ब्रह्म को विशेष गुणों से युक्त बताया गया है। अद्वैत वेदांत का प्रधान लक्षण यही निर्विशेष और निर्गुण ब्रह्म को बताया गया है। अद्वैत वेदांत में ब्रह्म को अनादि, अनंत जिसका न कोई अंत हो और न जिसकी कोई सीमा हो, सीमा से परे है जो वह ब्रह्म बताया गया है। ब्रह्म को आत्मा या चित् और मति जिसे महत् या बुद्धि कहा जाता है। उससे एकदम परे माना जाता है।

अद्वैत वेदांत में ब्रह्म – अद्वैत वेदांत में निर्गुण निराकार तथा निर्विशेष ब्रह्म को सत् चित् आनन्द के स्वरूप में बताया गया है। परम ब्रह्म का विश्लेषण करने पर अद्वैत वेदांत में पाया गया कि ये जो सत्य है वहीं ब्रह्म है। सत्य से यहां तात्पर्य ब्रह्म को एक नित्य सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। वे पूर्ण सत्य है, उसमें अज्ञान का एक कतरा भी विद्यमान नहीं हैं। यह ब्रह्म इस आकाश में रहते हुये भी सभी के चित्त में आत्मा रूपी गुफा में छिपे हुये है। जो साधक अपने विवेक ज्ञान से उस ब्रह्म को जान लेता है वह संसार के लौकिक सुखों का भोग ब्रह्म के साथ रहते हुये अलौकिक रूप में करता है। अर्थात् ब्रह्म का निर्गुण, निराकार और निर्विशेष रूप होना इसे अन्य भारतीय दर्शनों में सर्वश्रेष्ठ पायदान पर खडा कर देती है। इसके विपरीत ब्रह्म का जो सविशेष लक्षण है। वह निर्गुण ब्रह्म का दूसरा रूप है जिसमें ब्रह्म माया के साथ युक्त हो जाता है माया से युक्त हो जाने पर यह ब्रह्म ही ईश्वर का रूप धारण कर लेता है।

आत्मा या ब्रह्म को अद्वैतवेदांत का प्रतिपाद विषय माना जाता है। ब्रह्म या आत्मा ही इस माया का अधिष्ठान कर्ता है। माया का आश्रय ब्रह्म या आत्मा को माना जाता है। यह ब्रह्म समस्त ज्ञान का अधिष्ठता है। यह स्वयं सिद्ध तथा स्वयं प्रकाशमय है। बुद्धि के सारे विकल्प खण्डन–मण्डन, स्वीकृति– स्वीकृति उपाय–निषेध सभी इस ब्रह्म पर निर्भर है। उपनिषदों में ब्रह्म का स्वरूप आनन्दमय बताया गया है। यह आनन्द ही रस स्वरूप होता है आनन्द स्वरूप से तात्पर्य है कि जब जीवात्मा रस स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करता है तो वह स्वयं को आनन्दयुक्त कर लेता है। इसलिये आनन्दमय शब्द से तात्पर्य सर्वशक्तिशाली, सर्वविद्यमान, स्वयंभू, परंभू, सबके चित्तध्आत्म में अवस्थित उस परमब्रह्म से है।

अद्वैत वेदांत में परब्रह्म को सत्य ज्ञान और अनंत, सहारक बताकर उसी से संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति बताई गई है तथा यह भी बताया गया है इस रूप में उसने स्वयं ने अपने को प्रदर्शित किया गया है। शंकर ने ब्रह्म में किसी प्रकार के भेद को स्वीकृति नहीं दी है। भेद तीन प्रकार के माने गये है– सजातीय भेद अर्थात् एक गाय और दूसरी गाय का भेद, विजातीय भेद अर्थात् मनुष्य तथा गाय में भेद, स्वगत भेद अर्थात् एक टेबल–उसके अवयव में भेद। स्वगत भेद अर्थात् एक टेबल–उसके अवयव में भेद। ब्रह्म में इन तीनों भेद का सर्वथा अभाव होता है। शंकर ब्रह्म को व्याक्तिनिष्ठ नहीं मानते है। ब्रह्म का कोई व्यक्तित्व नहीं माना गया है। ब्रह्म के अन्तर्गत किसी प्रकार का विकास या परिवर्तन नहीं होता है। ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप माना गया है। सच्चिदानन्द स्वरूप से तात्पर्य ब्रह्म सत्ता विशुद्ध चेतना एवं आनंदमय है। ब्रह्म को भावात्मक रूप में समझने का यह एक तरीका शंकराचार्य स्वीकार करते है। साथ ही यह भाव स्पष्ट हो जाता है कि सगुण ब्रह्म को भावात्मक रूप में समझा जा सकता है। किन्तु निगुर्ण ब्रह्म को भावात्मक होकर नहीं समझा जा सकता। ब्रह्म अनिर्वचनीय बताया गया है। जिसे शब्दों या भावों के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। शंकर ब्रह्म को विश्व में व्याप्त तथा विश्व से परे दोनों रूपों में स्वीकार करते है। अतः शंकराचार्य के अद्वैतवाद का ब्रह्म माया का अधिष्ठाता है। उसी ने इस संपूर्ण विश्व को उत्पन्न किया है। वह इस संसार की रचना प्रक्रिया का कर्ता है। शंकराचार्य का वाक्य अंह

ब्रह्मोस्मि इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि सिर्फ मैं ही हूँ, मेरी ही सत्ता विद्यमान है मैं ही ईश्वर हूँ। इससे तात्पर्य है कि इस दुनिया में मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

अद्वैत वेदांत का मायावाद

माया को ईश्वर की शक्ति माना गया है। यह माया ही है जो ब्रह्म के स्वरूप पर (निर्गुण स्वरूप) पर्दा डालकर उसे विश्व के रूप में हमारें सम्मुख प्रदर्शित करती है। इसलिए माया को ईश्वर की शक्ति रूपा माना गया है। जिसे ईश्वर से पृथक नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार सुगंध को खाने से दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार यह माया शक्ति ईश्वर से पृथक नहीं रह सकती है। शंकराचार्य के दर्शन मे माया को अविद्या और अविद्या को माया के समान माना गया है। शंकराचार्य के दर्शन में आवरण जिसे छिपाना या ढकना कहते है को माया के रूप में तथा विक्षेप को अविद्या से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार शंकराचार्य माया और अविद्या दोनों को ईश्वर के दो पहलू या एक ही वस्तु के दो पहलू मानते हैं। शंकराचार्य के बाद के वेदांतियों ने माया और अविद्या में अन्तर किया है।

इसके अतिरिक्त अद्वैत वेदांत के अनुसार ब्रह्म के अलावा जो कुछ भी है वह माया ही है जो सम्पूर्ण जगत को अपने ढंग से प्रकाशित करती है। यह अविद्या ही ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को छिपा लेती है। उसे ढक देती है तथा आवरणित रूप में इस विश्व को प्रकाशित करती है। शंकराचार्य ने अध्यास भाष्य लिखा है। जिसे वह माया की विवेचना करने से पूर्व लिखते है। अध्यास के बारे में शंकराचार्य लिखते है कि (संक्षेप में) किसी प्रथम वस्तु का द्वितीय वस्तु में आभास होना, यही अध्यास रूप में समझा जा सकता है । शंकराचार्य तीन प्रकार की सत्ताओं को स्वीकार करते हुये लिखते है ''अध्यासों नाम अतिस्मिस्द् बुद्धि।'' सत्ताओं का नाम है स्वप्न, जाग्रत तथा पारमार्थिक सत्ता। इन तीनों का एक क्रम चलता रहता है स्वप्न सत्ता का जाग्रत सत्ता में अनुभूत तथा जाग्रत सत्ता का पारमार्थिक सत्ता में अनुभूत होता रहता है। कहने का आशय यह है कि किसी वस्तु को तभी सत्य कहा जा सकता है जब उसकी अनुभूति संभव हो। जिसका अनुभव नही कर सकते वह सत्य नहीं हो सकता। जैसे आकाश–कुसुम हमारे अनुभव का विषय नहीं हो सकता। किसी भी प्रकार के विषय का होना आवश्यक है चाहे वह विषय भ्रम ही उत्पन्न क्यों न करें। उदाहरण के रूप में रस्सी–सर्प। इसमें यदि विषय रस्सी ही नहीं होगी तो हम सर्प का अनुभव कैसे कर पायेगे। हम रस्सी को रस्सी न समझते हुये उसमें सर्प की प्रतीती कर लेते है, यही अध्यारोपण करना होता है यह अध्यास की स्थिति प्रतिभासिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर लागू की जा सकती है। अध्यास को माया या अविद्या जनित कहा जा सकता है क्योंकि जैसे ही ज्ञान का प्रकाश होता है, अध्यास अपने आप समाप्त हो जाता है।

शंकराचार्य इस माया को अनिर्वचनीय सत्ता के रूप में स्वीकार करते है। अनिर्वचनीय सत्ता से तात्पर्य यहां एक ऐसी सत्ता से है जो न तो सत् कही जा सकती है और न ही असत् कही जा सकती है। अर्थात् माया ऐसी सत्ता के रूप में विद्यमान है जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है और यह माया जगत पर आरोपण करती हैं। माया को वास्तविक भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह ज्ञान का उदय होने पर तिरोहित हो जाती हैं। माया को अवास्तविक भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जब तक ज्ञान का प्रकाश नहीं होता यह माया सत् ही बनी रहती हैं। माया में इतनी शक्ति है कि वह इस विश्व की रचना कर सकती है, जगत को उत्पन्न कर सकती हैं किन्तु इतनी शक्ति या सामर्थ्यता माया में नहीं है कि वह ब्रह्म को प्रतिबंधित कर पाये। इसलिए न सत् और न असत् यह माया अनिवर्चनीय हैं।

कश्मीर शिवाद्वयवाद

शैवागम की इस अद्वैतवादी विचारधारा का उदय कश्मीर प्रदेश में माना जाता है क्योंकि इस अद्वैतवादी दर्शन पर जितने भी साहित्य रचे गये हैं उनके रचयिता कश्मीर के निवासी है। अतः कश्मीर के बाहर इस सिद्धांत या दर्शन को कश्मीर शैव दर्शन भी कहा जाता है। इस दर्शन को प्रत्यभिज्ञा दर्शन के नाम से भी जाना जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन यह नाम मध्वाचार्य के द्वारा अपने ग्रंथ 'सर्वदर्शन संग्रह' में दिया गया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन से तात्पर्य यह हुआ कि यह दर्शन प्रत्यभिज्ञा सिद्धांत पर अवतरित माना जाता है। कश्मीर शैव दर्शन के साहित्य को देखा जाये तो इस दर्शन को त्रिकमत के नाम से भी जाना जाता हैं। इस दर्शन में पति, पशु और पाश इन तीन तत्वों को स्वीकार किया जाता है। पति से आशय शिव, पशु से आशय जीव तथा पाश से तात्पर्य बंधनों से होता हैं। इसके साथ ही यह दर्शन ज्ञान के तीन पक्ष अर्थात् भेद, अभेद और भेदाभेद तीनों वादों की व्याख्या अपने दर्शन अभेदवाद के आधार पर करता हैं। इस सिद्धांत को त्रिकमत् कहने से तात्पर्य यह भी लिया जाता है क्योंकि इसमें 'नामकतंत्र', 'सिद्धांततंत्र' और 'मालिनीतंत्र' इन तीनों तंत्रों को भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। साथ ही इस दर्शन को त्रिक् श्रेणी में रखने से तात्पर्य यह भी है कि ये दर्शन पर, अपर और परापर तीनों त्रिक् स्वीकार करता हैं। कश्मीर शैव दर्शन को आज वर्तमान युग में जानने का सहायक मार्ग आगमशास्त्र, प्रत्याभिज्ञाशास्त्र और स्पंदशास्त्र को माना जाता है। रचनाकाल की बात की जाये तो आगमशास्त्र का स्थान और समय पूर्व में रखा जायेगा क्योंकि ऐसा माना जाता है कि आगमशास्त्र स्वयं भगवान शिव के द्वारा व्यक्त शास्त्र है, उनके वक्ता भगवान शिव स्वयं माने जाते हैं।

कश्मीर शिवाद्वयवाद में प्रत्यभिज्ञा दर्शन या प्रत्यभिज्ञा शास्त्र को कश्मीर शैवदर्शन का दर्शनशास्त्र कहा गया हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने ही सर्वप्रथम कश्मीर के अद्वैतवादी विचारधारा का दार्शनिक रूप में विवेचन प्रस्तुत किया था। यह शैवदर्शन की दर्शनशास्त्र रूपी एक विशिष्ट परम्परा थी जिसने अपने पूर्ववर्ती दर्शनों के सिद्धांतों का खण्डन और उन्हें दोषी दर्शन कहकर अपने मत की प्रबल स्थापना की। कश्मीर शैव दर्शन की दृष्टि आध्यात्मिक है और आध्यात्मिक में भी अद्वैतवादी है। एक ही तत्व जो जगत से परे तथा जगत में अवस्थित है। सभी जगह वह प्रकाशमान हैं। अतः उस परम शिव को परमकारण कहा गया हैं – "शिव परमकारणम्" इसके साथ ही कहीं अन्य स्थान पर इस परमशिव को महाचिति, चौतन्य, आत्मा के रूप में भी माना गया हैं। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है – पहचान करना। जीव को शिव ही माना गया हैं। किंतु जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है और अपने शरीर तथा मन को ही वास्तविक समझने लगा हैं। प्रत्यभिज्ञा का उद्देश्य उसे इस सत्य से अवगत कराना है कि उसका वास्तविक स्वरूप शिव है। शिव के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं है और वह अपना समावेशन पूर्णतः शिव में ही कर ले, यही प्रत्यभिज्ञा दर्शन का उद्धेश्य हैं। कश्मीर शैव दर्शन में 36 तत्वों को स्वीकार किया गया हैं। यहां तत्व से अभिप्राय समान कार्य और समान गुणों के समूह में जो वस्तु अपने समान कार्य या समान दृष्टि वाली वस्तु में व्यापक हो उसे तत्व कहा जाता हैं। तत्व के तीन रूप हैं – शिवतत्व, आत्मतत्व और विद्यातत्व। शिव तत्व के भी दो तत्व माने गये हैं – शिव और शक्ति। कश्मीर शिवाद्वयवाद में इन दो तत्वों को लेकर ही अद्वैत वाद की स्थापना की गई है। आगे हम शिव और शक्ति के स्वरूप का अध्ययन कश्मीर शैव दर्शन के आधार पर करेंगे।

शिव तत्व

कश्मीर शैव दर्शन में शिव तत्व को चेतन स्वरूप कर्ता और विश्व से परे माना गया हैं। शिव तत्व ही इस ब्रह्माण्ड में सभी अवस्थाओं में अवस्थित रहता है। यह शिव स्वयं को प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य तत्व की सहायता नहीं लेता अपितु स्वयं प्रकाशित होता हैं। स्वयं को प्रकाशित करने के कारण यह उसका स्वातंत्र्य वाद कहलाता हैं। इस स्वातंर्त्यवाद को मानने के कारण ही शैव दर्शन में जगत को मिथ्या नहीं माना जाता है, बल्कि इस विश्व को सत् रूप में स्वीकार किया जाता हैं। शिव तत्व की स्वतंत्रता पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्वतंत्र होने के कारण ही शिव इस जगत की वस्तुओं का भोग स्वेच्छा से करता हैं। कश्मीर शैव दर्शन की विशेषता यह है कि ये ज्ञान मार्ग के साथ भक्ति मार्ग को भी स्वीकार करता है। शिवाद्वयवाद में ज्ञान मार्ग का भक्ति मार्ग के साथ सामंजस्य को महत्ता दी गई है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के शिवसूत्रों में

शिवतत्व के लिये या परमात्मा के लिए लिखा गया हैं कि 'शिव एव शिवस्य आत्मा।' अर्थात् शिव ही इस जगत की आत्मा हैं वह कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। उस पर कोई बाध्यता नहीं है। यहां शिव की उत्पत्ति अद्वैत प्रतिपादन के लिए ही हुई है ताकि शिव और आत्मा, शिव और जगत और शिव तथा जीव में कोई द्वैत न रह सकें। शिव की उत्पत्ति पाश या बंधनों का नाश करने के लिए होती हैं। पति यानी शिव के द्वारा पशु यानी जीव के कर्मफलों या बंधनों यानी पाश का निवारण स्वयं शिव के द्वारा किया जाता हैं। इसलिए शिव को स्वातंर्त्यवादी कहा गया हैं। वह अपनी स्वातंर्त्य शक्ति के द्वारा उस जीव को इन पाश से मुक्त कर देता है जो सत्य ज्ञान की प्राप्ति और भक्ति मार्ग की प्राप्ति का साधन बनाता हैं क्योंकि शुद्ध तत्व परमतत्व शिव, माया से परे हैं। सम्पूर्ण जगत शिवमय हैं। अर्थात् शिव जगतमय और पूरा विश्व शिवमय कहा जाता है क्योंकि संसार के प्रत्येक चर–अचर, जीव–जंतु, पेड़–पौधे, सुख–दुःख, गति, स्थिरता सभी में शिव को माना गया हैं। ऐसा कोई भी तत्व या प्राणी नहीं जिसमें शिव अभिव्यक्त न हो। शिव ही अद्वैतवादी दृष्टिकोण से ज्ञेय हैं। इसलिए शिव तत्व का जप करने वाला साधक अद्वैत–भाव रखने के कारण, शिव का चिंतन करने के कारण शिव के समान हो जाता हैं। कहने का तात्पर्य संपूर्ण जगत में या व्यावहारिक और पारमार्थिक दृष्टि की बात की जाये तो सब कुछ शिव हैं। सभी शिवमय हैं। ब्रह्म से लेकर सबसे सूक्ष्मतम तत्व जो कुछ भी दृष्टमान है, वह सब शिव से उत्पन्न हैं। इस विश्व, जगत और सृष्टि की रचना उसकी शक्ति पर निर्भर करती हैं। शक्ति से तात्पर्य उसकी इच्छा शक्ति से हैं। इस बात को केवल वह परमशिव जानता हैं, उसके अतिरिक्त कोई भी इस बात को नहीं जानता। शिव इस जगत की रचना करते हुये भी इस जगत से परे (दूर) रहता हैं। शिव का यह रूप प्रतिभासिक सत्ता के रूप में जाना जाता हैं। अज्ञान होने के कारण ही जीव उसको द्वैतवाद के रूप में समझ लेता है। यह बुद्धि का द्वैत ही होता है नहीं तो, जीव भी इस शिव का ही अंश हैं। वह अविद्या और मोह माया से ग्रसित होने के कारण – "मैं कोई ओर हूँ" इस प्रकार का विचार अपना लेता हैं। उस माया–मोह से मुक्त होने पर ही जीव अपने आप को शिव के साथ एकाकार कर पाता हैं। अज्ञानयुक्त बंधनों से मुक्त होने पर ही जीव का शिवमय होना सार्थक होता हैं। परमशिव अपनी स्वतंत्र शक्ति के द्वारा ही बिना बिम्ब के होते हुये भी विश्वरूपी प्रतिबिम्ब को स्वतः उत्पन्न कर देता हैं। परमेश्वर में यह जगत अभिन्न होने पर भी उस परमेश्वर से भिन्न प्रतिबिम्बित होता दिखाई देता हैं। यह परमतत्त्व ही शिवतत्त्व से लेकर क्षितिपिर्यन्त सर्वत्र अपने स्वरूप का ही आभासन करते हुये स्वातंर्त्य लीला में मग्न है।

शक्ति तत्व

आचार्य क्षेमराज ने विश्व सिसृक्षा को प्राप्त परमेश्वर के प्रथम स्पन्द को शक्तितत्व कहा है। यह कोई अन्य तत्व के रूप में कश्मीर शिवाद्वयवाद में स्वीकार नहीं किया गया है। इसे शिव की ही शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया हैं। शिव की यह वो शक्ति हैं जिससे समस्त विश्व की चेतन और अचेतन वस्तुओं की उत्पत्ति होती हैं। परमशिव की चेतना का कारण शक्ति को माना गया हैं। शिव इस शक्ति की प्रेरणा या चेतना से ही अभिभूत होकर इस विश्व का विकास करता हैं। चूंकि शिव को स्वतंत्र शक्ति से युक्त माना गया हैं जिसके द्वारा वह जगत की उत्पत्ति, विनाश रूपी कृत्यों को करने में रूचि दिखाता हैं। ये सृष्टि और विनाश जैसे कृत्य व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दोनों रूपों तक देखे जाते हैं। पारमार्थिक सत् को अभिव्यक्ति से रहित माना जाता है। पारमार्थिक सत् को अभिव्यक्ति से रहित माना जाता हैं। परमशिव को चित् भी इसलिए कहा जाता हैं क्योंकि उसमें प्रकट या प्रकाशित करने की शक्ति विद्यमान हैं। शिव जब अपने अंतर्मन में अवस्थित तत्व को बाहर उत्पन्न करने के लिए अभिमुख होता हैं तो उसे शक्ति कहते हैं। शक्ति को मन की गतिशीलता या चंचलता कहते हैं। शैव दर्शन में शिव तत्व को एक सर्कस के कलाकार के रूप में अभिव्यक्त किया गया हैं। जैसे – एक कवि या कलाकार अपने भीतर के मनोभावों या आनंद को भीतर छिपा कर नहीं रखकर उस आनंद को अपनी कृतियों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं उसी प्रकार शिव भी अपने अंदर की कलात्मकता को छिपाकर नहीं रखते अपितु शक्ति की उत्प्रेक्षणा के कारण उसे आनंदपूर्ण चमत्कार अर्थात् जगत या सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त करता हैं। शक्ति आनन्द से भावित होकर अपने को सृष्टि रूप में प्रकट करती हैं। जितनी भी दृश्यात्मक रचनायें या सृष्टि है वे सभी उस शिव की कल्पना की अभिव्यक्ति हैं। शिक्त तत्व का मूल प्रधान तत्व आनंद हैं। जो कि महेश्वर या परमशिव को आनंदित करती है। सामान्यतः शिव की जो शक्ति है उसका रूप आभास होना नहीं है बल्कि वह सभी आभासों का आधार हैं। यह शक्ति जिसे हमेशा शिव से भिन्न रूप में बताया जाता है, वास्तव में वह उस शिव की चेतन की शक्ति है। वह निरपेक्ष, निर्बाध और स्वतंत्र शिव की शक्ति हैं। परमेश्वर की यह शक्ति ही महाचित्ति कहलाती हैं। इसका स्वरूप स्वयंसिद्ध हैं। यह परमात्मा का प्रमुख अंश हैं। शक्ति वह स्वरूपा है जो स्वयं में कोई विकार न होते हुये भी सभी विकारों को पैदा करती हैं। यह महाचित्ति ही है क्योंकि यह सभी में विद्यमान होती हैं। यह देश और काल दोनों से भिन्न स्वरूप हैं और परमशिव का स्वरूप हैं।

शक्ति जो कि शिव का क्रियात्मक रूप है, जो शिव से युक्त है, उसी के द्वारा शिव इस संसार के कृत्य करते हैं। इसी शक्ति से जीवों के कल्याण के लिए शिव के द्वारा आत्मिक बल का प्रकाशन होता हैं। शिव के अनुग्रह से साधक पर शक्तिपात होता हैं। यहां शक्तिपात से तात्पर्य होता है – शक्ति का किसी पर गिरना और यह तभी हो पाता है जब किसी पर शिव की कृपा हो। इस शक्ति की विभिन्न क्रियाओं द्वारा ही जगत की सभी क्रियाएँ संभव हो पाती हैं। यह पराशक्ति ही शिव की सर्वोच्च शक्ति हैं। इस शक्ति को पराशक्ति इसलिए कहते हैं क्योंकि इसकी शक्तियाँ जगत में व्याप्त होकर भिन्न–भिन्न कार्यों को पूरा करती हैं। अर्थात् शक्ति का तात्पर्य वह है जो शिव से अभिन्न हैं, जिसे शिव से अलग नहीं किया जा सकता हैं, यह शिव की चेतन शक्ति हैं जो शिव को कार्य करने अर्थात् सृष्टा, संहारक, विकास, उत्पत्ति, नाश आदि कृत्यों को करता हैं। शक्ति के कारण ही शिव में आनंद का संचार होता है, रस की उत्पत्ति होती हैं। यह शक्ति का स्वरूप 'पूर्ण अहं विमर्श' हैं। यह अहं ही वह तत्व है जिसके द्वारा यह शिव की शक्ति विविध रूपों में प्रसारित होकर के विश्व के कई रूपों में अवभासित होती हैं। शिव की शक्ति की क्रियाशीलता द्विमुखी है अर्थात् यह अंतर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों हैं। यह शक्ति विमर्श रूप होने के कारण प्रत्येक पदार्थ का स्वतंत्र 'अहं' रूप में विचार कर सकती हैं। संसार की जितनी भी प्रमाता, प्रमेय और प्रमाणों संबंधी कल्पनाएँ है उन सभी में यह शक्ति प्रतीत होती हैं। इन सभी से भिन्न रूप में भी शक्ति प्रकाशित होती रहती हैं। विश्व के जितने भी पदार्थ, वस्तुयें है वे सभी इस क्रिया शक्ति से ही संचालित होते हैं। यह शक्ति एक होते हुये अनंतलहरों में प्रवाहित होती हैं। यह शिव की शक्ति ही उसे कार्य करने के लिए उकसाती हैं। इस शक्ति को विमर्श भी कहा जाता है। एक शिवदशा में ही साधक शिवमय होता है किंतु इसके अतिरिक्त साधक जिस भी दशा में हो उसका कारण माया ही होती हैं। इस शिव की शक्ति को इदं भाव के लिए माया कहा जाता हैं। जब यह इदं भाव, अहं भाव में लीन हो जाता है तब इसे ही शक्तिपात कहा जाता है। शिव में प्रविष्ट होने का मुख्य द्वार ही शक्ति हैं। इसलिए शिव की अपनी स्वातंर्त्य शक्ति जब माया का रूप धारण करती है तो शिव को अपनी पूर्णता और स्वतंत्रता को लेकर संशय होने लगता हैं। यह क्रियाशक्ति ही अज्ञानता के कारण बंधन का कारण बनती हैं।

तुलनात्मक विमर्श

अद्वैत वेदांत और कश्मीर शिवाद्वयवाद दोनों ही विचारधारायें अपने–अपने मत द्वारा अद्वैतवाद को स्थापित करती हैं। दोनों विचारधाराओं का परमसत्ता, माया, शिव और शक्ति को लेकर अपना–अपना विचार है। यदि इनकी भिन्नता की बात की जाये तो अद्वैत वेदांत परमसत्ता को ब्रह्म कहकर संबोधित करता है जबकि कश्मीर शिवाद्वयवाद अपनी परमसत्ता को शिव रूप मानता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय हैं। जगत की जितनी भी वस्तुये है वे सभी इस ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न की गई है। ब्रह्म ही जगत का सृष्टिकर्ता, विनाशक, संहारक इत्यादि रूप माना गया हैं। अद्वैत वेदांत के अनुसार जब आत्मा का अविद्या से संबंध होता है तब आत्मा को जीव कहा जाता हैं। यह जीव रूप एक अध्यास या भ्रम की उत्पत्ति हैं। अद्वैत वेदांत में ब्रह्म

ही केवल एक–मात्र सत्य है उसके अलावा जगत की सभी वस्तुये असत् हैं। जीव और ब्रह्म में पारमार्थिक भेद को स्वीकार किया गया हैं और जगत का असत् होना पारमार्थिक दृष्टि से माना गया है। इसके विपरीत कश्मीर शिवाद्वयवाद में परमसत्ता को शिव का रूप कहा गया हैं। इसके अनुसार यह संपूर्ण विश्व ही शिवमय हैं। संसार के प्रत्येक कण–कण में चाहे वह जड़ हो या चेतन को शिवमय बताया गया हैं। यह शिव ही है जो जीव रूप में दिखाई देता है। यहां अध्यास को शक्ति का संकोच कहा गया है। अद्वैत वेदांत में जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि उस पर माया का आवरण होता हैं। यह माया ही जीव को उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होने देती और यह माया ही ब्रह्म को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रकाशित होने नहीं देती। इसी प्रकार शिवाद्वयवाद में शिव की शक्ति जो कि शिव को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है वही शिव जीव रूप में प्रकट होता है। यहां जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान शक्ति के संकोच के कारण नहीं हो पाता है। शक्ति ही शिव को वास्तविकता से परे करती है। शिव की शक्ति ही अपनी इच्छा से विश्व को व्यक्त करती है।

अद्वैत वेदांत जीव को केवल बुद्धि का कर्ता मानता है जो कि आत्म निष्क्रिय की अवस्था में होता है जबकि शैव दर्शन में जीव शिव रूप में होता है। अद्वैतवेदांत जीव को माया या अविद्या का कारण मानता है जबकि शिवाद्वयवाद जीव को मल कंचुको का कारण मानता है। अद्वैत वेदांत में जीव को अपने स्वरूप का अज्ञान होता है, शिवाद्वयवाद में जीव को पूर्ण ज्ञान का अज्ञान होता है। जगत के संबंध में भी दोनों दर्शनों में भेद है। अद्वैत वेदांत पारमार्थिक दृष्टि से जगत को मिथ्या कहता है किंतु शैव दर्शन में जगत को सत् मांना गया हैं क्योंकि जगत का स्वरूप शिव से भिन्न नहीं है।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ये दोनों दर्शन अपने–अपने मत के अनुसार अद्वैतवाद की स्थापना करते हैं। इन दोनों दर्शन को एक–दूसरे का विरोधी नहीं समझना चाहिए। दोनों दर्शन का अंतिम प्रयोजन जीव या साधक को मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करवाना है। अद्वैत वेदांत में मोक्ष का आशय ब्रह्ममय होने से हैं तथा कश्मीर शिवाद्वयवाद में मोक्ष से आशय शिवमय होने से लिया गया हैं। अर्थात् दोनों विचारधाराओं की उद्देश्य एक है, बस उस उद्देश्य तक पहुंचने का मार्ग अलग हैं। उन मार्ग को अलग–अलग नामों से दिखाया गया हैं। अद्वैत वेदांत में मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान को साधन माना गया हैं। ऐसा साधन जिसमें इच्छाओं की लेशमात्र भी उपस्थिति न हो। इसके विपरीत कश्मीर शिवाद्वयवाद में मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान और क्रिया के साथ इच्छाओं के समन्वय को भी स्वीकार किया गया हैं। इस प्रकार दोनों दर्शन में मूलभूत अंतर इच्छा तत्व को ही माना गया हैं। एक विचारधारा मोक्ष प्राप्ति में इच्छा को बाधक तत्व रूप में स्वीकार करती हैं, तो दूसरी विचारधारा इच्छा के बिना मोक्ष की कल्पना भी नहीं करती। दोनों दर्शन या विचारधारायें आध्यात्मिक मार्ग को प्राथमिकता देती हैं। दोनों ही साधक की कल्याणकारी दार्शनिक विचारधारायें हैं। अब ये मानव के ऊपर निर्भर करता हैं कि वह अपने कल्याण के लिए इन दोनों विचारधाराओं में से किसे प्राथमिकता देना चाहता हैं।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 8
2. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 34
3. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 47
4. जोशी, डॉ. भंवरलाल, कश्मीर शैव दर्शन और कामायनी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1968, पृ. 5
5. प्रदीप, कश्मीर शैव दर्शन का परिशीलन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 30
6. प्रदीप, कश्मीर शैव दर्शन का परिशीलन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 65
7. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 104
8. जोशी, डॉ. भंवरलाल, कश्मीर शैव दर्शन और कामायनी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1968, पृ. 60
9. जोशी, डॉ. भंवरलाल, कश्मीर शैव दर्शन और कामायनी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1968, पृ. 70
10. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 126
11. शर्मा, चंद्रधर, भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2010, पृ. 239